राजेन्द्र यादव की कहानियों में स्त्री–प्रश्न

Vishwanath Yadav

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में एक आशा की लहर दौड़ गई। जिससे समाज का कोई भी वर्ग अछूता नहीं रहा। लेकिन जब इस आशा का यथार्थ सामने आया, तो इससे कई वर्गों का मोहभंग हो गया। जल्दी ही उन्हें यह समझ आने लगा कि यह आजादी सबकी आजादी नहीं अपितु, एक 'विशेष सामाजिक वर्ग' की आजादी है। समाज के उन वर्गों विशेषकर स्त्री व दलित के लिए इसका कोई औचित्य नहीं है। समाज में उनकी स्थिति जस की तस बनी रहे, इसका प्रयास एक वर्ग द्वारा जारी रहा। वे उनकी स्थितियों में किसी भी प्रकार के बदलाव को स्वीकार ने के पक्ष में नहीं थे। परिणाम स्वरूप इन वर्गों ने अपनी अस्मिता, समानता, स्वतन्त्रता आदि अधिकारों के लिए संघर्ष प्रारम्भ किए। जिसके लिए विभिन्न आन्दोलन चलाए गये। इस सामाजिक परिवर्तन से साहित्य भी अछूता नहीं रह सका। स्त्री विशेष के सन्दर्भ में इस परिवर्तन के क्रम को कई साहित्यकारों ने अपने लेखन में स्थान दिया। जिनमें से राजेन्द्र यादव प्रमुख हैं।

राजेन्द्र यादव की कहानियों में स्त्री की छवि देखने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है, कि उस समय के समाज में स्त्रियों की छवि को देख लेना चाहिए। समाज में स्त्री की छवि को या तो आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, या फिर कुलच्छनी के रूप में। आदर्श रूप में उसकी छवि ऐसे गढ़ी (स्त्री पैदा नहीं होती उसे बना दिया जाता है– सीमोन द बोउवार)[1] जाती है, वह किसी भी स्थिति में समाज के सामने प्रश्न न खड़ा करे, वह अपने प्रति हो रहे भेदभाव या अत्याचार को मूक रूप में सहन कर समाज में आदर्श स्थापित करें। यदि वे ऐसा नहीं करती हैं, तो न केवल परिवार ही टूटेगा अपितु इससे समाज भी प्रभावित होगा, अतः स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि, वह समाज की उन 'मर्यादाओं' के दायरे में रहें जो पुरुषों द्वारा बनाई गयी हैं। इसके विपरीत वह यदि अपनी स्वतन्त्रता, समानता व अधिकारों की माँग करती हैं, तो उसे कुलटा या कुलच्छनी

बना दिया जाता है। सदियों से दमित स्त्री ने अपने प्रति हो रहे इस व्यवहार को बिना प्रश्न किये स्वीकार करती रही हैं इसका विरोध करने की चेष्ठा नहीं की। इस सन्दर्भ में प्रभाखेतान द्वारा 'स्त्री–उपेक्षिता' की लिखी भूमिका की पंक्तियाँ दृष्टव्य है जहाँ वे स्त्री के इस व्यवहार की विवेचना करती हैं– ''विश्व की प्रत्येक संस्कृति में पाती हैं, कि या तो स्त्री को देवी के रूप में रखा गया है या गुलाम की स्थिति में। अपनी इन स्थितियों को स्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया, बल्कि बहुत सी जगहों पर सहअपराधिनी भी रही। आत्म हत्या का यह भाव स्त्री में न केवल अपने लिये रहा, बल्कि वह अपनी बेटी, बहू या अन्य स्त्रियों के प्रति भी आत्म पीड़ा जनित द्वेष रखती आई है। परिणामस्वरूप स्त्री की अधीन्स्थता और बढ़ती गई।''[2]

यहाँ पर इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि समाज स्त्रियों की छवि को लम्बे अरसे से पुरुषप्रधान या कहें पुरुषवादी नजरिए से प्रस्तुत करता रहा है। ऐसे में एक पुरुष साहित्यकार स्त्रियों की कैसी छवि उभारता है। यह देखना महत्वपूर्ण होगा, विशेषकर तब जब कोई महिला साहित्यकार यह प्रश्न खड़ा करें कि ''पुरुष लेखन कितनी भी संवेदनशीलता दिखाये, स्त्री के पक्ष में लेखन, पुरुष का 'आदर्शवाद' है, लेकिन अपने पक्ष में स्त्री लेखन उसका 'यथार्थवाद' है।''[3]

राजेन्द्र यादव ने स्त्रियों से जुड़े मुद्दों को साहित्य के केन्द्र में लाये। उन्होंने सम्पादक के रूप में स्त्री लेखन को प्रोत्साहित किया जो किसी कारण लिखने से सकुचा रही थी। इस सन्दर्भ में ममता कालिया लिखती है– ''वे हंस के माध्यम से उस औसत औरत और युवती को सम्बोधित थे, जिनके पास अनुभव थे, अभिव्यक्ति नहीं थी, उनके पास संवेग और संवेदना थी, साहस नहीं था, राजेन्द्र यादव ने उन गूंगी स्त्रियों को नया साहस दिया।''[4]

राजेन्द्र यादव ने शुरुआती दौर की अधिकांश कहानियों में स्त्री से जुड़े मुद्दों को केन्द्र में रखा है। जिसे वे अपने स्वस्थ लेखन का दौर कहते हैं। जिसका जिक्र वे ओमा शर्मा को दिये साक्षात्कार में करते हैं– ''एक तो ये विश्वास की हम कुछ नया कर रहे हैं, दूसरे वे रचनाएँ जो

हम एक दूसरे से प्रेरित होकर लिखते थे, इसमें एक स्वस्थ किस्म की स्पर्धा थी, जबकि बाद की चीजों में लेखन तो गौंड़ हो गया, राजनीति हावी हो गयी।''[5]

राजेन्द्र यादव की कहानियों की स्त्री 'उपरोक्त' छवि को स्वीकार नहीं करती, वह अपनी भावनाओं का इजहार करती हैं, इसके लिए वह वैचारिक स्तर पर संघर्ष करती हैं। वह अपने उन अधिकारों की माँग करती हैं जो उसे एक मनुष्य जाति के रूप में या नागरिक के रूप में मिलने चाहिए। इसके अतिरिक्त वह उन तमाम राजनीतिक सामाजिक बन्धनों से मुक्ति चाहती हैं, जिसके कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसका शोषण किया जाता रहा है।

समाज में स्त्रियों को विभिन्न बन्धनों में रहना पड़ता है। इसके लिए उसे बचपन से पिता के संरक्षण में बाद में पति के संरक्षण में और अंत में पुत्र के संरक्षण में रहना पड़ता है। पुरुष उसमें असुरक्षा की भावना को जगाकर, उसे अपने वंश में रखने का प्रयास करता हैं, जिससे वह उस पर नज़र रख सके। दरअसल वह स्त्री की स्वतन्त्रता को स्वीकार नहीं करता, उसे अपने अधीन रखना चाहता है, इससे स्त्री अपनी इच्छा से किसी से बात तक नहीं कर सकती प्रेम करना तो दूर की बात हैं, परन्तु सबिता समाज के इस बन्धन को तोड़ने का प्रयास करती है। वह अपनी इच्छा से प्रेम करना चाहती हैं, वह प्रेम को अपनी मुक्ति के रूप में देखती है, इसलिए वह अपने प्रेम की स्वीकृति अपने पति लोकेश के सामने करती हैं– ''सच बताएं? जो तुमने सुना था वह भी गलत नहीं था और हमारे–तुम्हारे बीच में वह नहीं हैं, यह भी सही हैं।''[6]

अपनी इस स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के कारण वह अपने पति का विश्वास खो देती है, जबकि समाजिक बंधनों के कारण अपने प्रेमी से पहले ही दूर हो गयी है सविता की इस स्थिति का जिम्मेदार दोनों ही रूपों में पुरुष हैं, क्योंकि वह इन दोनों ही स्थिति में पुरुष के अधीन रहती हैं। उसका प्रेमी जो उसे इस चरित्र के कारण 'कमजोर लड़की' कहता हैं, तो दूसरी तरफ उसका पति यह कहकर कि– ''तुम दोनों जगह ईमानदार नहीं रही हो।''[7] उसके चरित्र को संदेह की नजर से देखता है।

दरअसल पूरी कहानी में स्त्री की छवि 'प्लास्क' में तैरती उस मछली की तरह है, जो अपने विहार से पानी को जरा भी नहीं कंपाती, लेकिन हमेशा तैरती रहती है, अनुभव होता है कि, वे है।' अर्थात् कहानी सविता समाज में स्त्री के होने का एहसास तो कराती है, 'जो अपने भावों का इजहार कर सकती है लेकिन वह समाज को प्रभावित नहीं कर पाती है।

सबिता जिस भाव को केवल इजहार करती है उसे वैचारिक स्तर पर नलिनी उठाती है। वह उससे संघर्ष करती है। वह सामंती समाज की उस सोच का प्रतिवाद करती है जो स्त्री को वस्तु के रूप में देखता है, और उसे केवल भोग वस्तु मानता है। उसकी सामंती सोच यह स्वीकार ही नहीं करती कि, वह (स्त्री) भी उसकी तरह एक चेतनमय प्राणी है जिसकी अपनी इच्छाएँ है, अभिलाषा है, कुछ बनने की कुछ करने की। इसके लिए वह उस समाजिक ढाँचे को तोड़ना चाहती है। जिसमें उसके जीवन से जुड़े सारे निर्णय समाज करता है, जो कि पुरुष प्रधान है। वह अपने निर्णय स्वयं लेना चाहती है। वह उन समाजिक बन्धनों का विरोध करती है, जो उसकी इच्छा या व्यक्तित्व का दमन करते हैं। नलिनी शादी के बन्धन का विरोध करती है– ''जब मैं शादी नहीं करना चाहती तो क्यों? ये लोग मुझे विवश कर रहे हैं, कि मैं शादी करू ही... ये लोग किसी का विकास होते नहीं देख सकते, मैं बुद्धिमान हुँ, मैं प्रतिभाशाली हुँ, मैं सुन्दर लगती हूँ मैं सौन्दर्यशालिनी हूँ, फिर? आपको इन सब बातों से क्या मतलब? आपको यह कैसे विश्वास हो गया कि, मैंने ये सब चीजें आपके लिए सहेज कर रखी हैं? इसमें मेरा कुछ नहीं है?''[8]

दरअसल विवाह स्त्री के लिए एक ऐसा सामाजिक बन्धन है जिसमें स्त्री की अस्मिता उसके पति के साथ जोड़ दी जाती है। समाज उसके पति को उसके जीवन से जुड़े पहलुओं का निर्णय लेने का अधिकारी बना देता है। वही उसके भविष्य का निर्णय करता है। उसका पति चाहता है, कि पत्नी घर का काम करे, उसके माता–पिता की सेवा करे, उसके बच्चों का पालन–पोषण करे, इन सब के लिए वह अपनी इच्छा महत्वाकांक्षा का दमन कर दे। और घर–परिवार तक सीमित रहे। समाज के इन बन्धनों का विरोध करने के बाद भी समाज के ठेकेदार उसका विवाह करा देते

हैं। इसके उपरान्त अपने जीवन में आये बदलाव को नलिनी इन शब्दों में व्यक्त करती है– ''मेरे चारों ओर अंधकार की एक अभेद चादर आकर खड़ी हो गयी है– मैं तब कितना रोइ–चीखी थी कि मुझे इस अंधकार के गर्त में मत ढकेलो, मैं वहाँ मर जाऊगी। इस अंधकार के खूनी पंजों ने मेरी अभिलाषाओं और उच्चाकांछाओं का गर्दन मरोड़ दी है।''[9]

साइकिल नामक कहानी में राजेन्द्र यादव ने एक ऐसी स्त्री की छवि को दिखलाया है। जो विरोधी तो है, लेकिन उसका विरोध मुक्ति का पर्याय नहीं बन पाता। यहाँ भी स्त्री का स्वर पुरुष की उपभोक्तावादी इच्छाओं के अधीन दमित होकर रह जाता है– ''मेरी तरफ से एपॉइण्टमेण्ट करते वक्त जरा पूछ ही लेते फोन से... क्या मेरी अपनी कोई इच्छा ही नहीं है।''[10]

इस कहानी में आगे यह देख सकते हैं, कि स्त्री किस प्रकार अपनी मूक प्रवृत्ति को गाय के रूप में देखती है जिसका संचालन पुरुषवादी सत्ता करता है। स्त्रियों की इस स्थिति पर– ''वह सोचने लगी कि आगे जाती हुई बैलगाड़ी और पीछे की इस जोड़ी में कितना साम्य है।''[11] उससे अधिक नहीं देखा गया और उसने खिड़की बन्द कर दी।

'जहाँ लक्ष्मी कैद है' में एक ऐसी स्त्री की छवि है जो पुरुष की उपयोगितावादी प्रवृत्ति को मुखर विरोध करती है। पुरुष कभी उसे सभ्यता–संस्कृति के नाम पर तो कभी समाजिक सुरक्षा का प्रश्न उठाकर उसे घर में कैद रखना चाहता है। तो कभी अपनी उपयोगिता या स्वार्थ के लिए उसे वस्तु मानकर सौभाग्य के नाम पर कैद कर के रखता है। इससे वह अपने हित की पूर्ति के लिए किस प्रकार उपयोग करता है, को यह कहानी दर्शाती है। कहानी में लक्ष्मी के पिता– ''को यह विश्वास हो गया कि लड़की सचमुच लक्ष्मी है और जब यह दूसरे की हो जायगी तो इसका भी एकदम सत्यानाश हो जाएगा। इसी डर से न तो किसी को आने–जाने देता है और न उसकी शादी करता है... लक्ष्मी सोलह की हुई, सत्रह की हुई, अठारह, उन्नीस साल पर साल बीत गये... फिर तो मालूम नहीं क्या हुआ कि घण्टो रात–रात भर पड़ी जोर–जोर से रोती रहती फिर धीरे–धीरे उसे दौरा पड़ने लगा।''[12]

अतः इस कहानी में स्त्री की विरोधी छवि अभिव्यक्ति की ओर बढ़ती दिखलाई पड़ती है। जिसे हम लक्ष्मी के विरोधी स्वर में देख सकते हैं– ''जो हाथ में आता है उससे मार–पीट शुरु कर देती है, और सारे कपड़े उतारकर फेंक देती है। बिल्कुल नंगी हो जाती है और जाँघे पीट–पीटकर बाप से कहती है, 'ले, तूने मुझे अपने लिए रखा है, मुझे खा, मुझे चबा, मुझे भोग... |''[13]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कहानियों में स्त्री के संघर्ष की परिणति परिस्थितियों के आगे समपर्ण से व केवल आकुलाहट, व्याकुलता झटपटाहट तक सीमित रह जाती है।

लेकिन जैसे ही अगले क्रम में आगे बढ़े तो देखते हैं, कि राजेन्द्र यादव की कहानियाँ की स्त्री का स्वर, न केवल घर में कैद स्त्री की वैचारिक मुक्ति, अपितु देह मुक्ति की ओर प्रखर होता है। जिसे हम 'रहस्यवाद' कहानी की आरती के रूप में देखते हैं।

'रहस्यवाद' कहानी की आरती जो एक क्रान्तिकारी है। वह पुरुषों के साथ मिलकर पुलिस (अंग्रेज) को मारने में उतनी ही भूमिका निभाती है, जितना एक पुरुष। लेकिन पुरुष प्रधान समाज उसे बराबरी का दर्जा नहीं दे पाता, वह उसे अपने जैसे एक क्रान्तिकारी के रूप में न देखकर, स्त्री के रूप में देखता है। जो कि उसके लिए 'देह' मात्र है, और जिस पर आरती को एक रात किसी पुरुष के साथ होने का अर्थ है, उस देह की शुचिता का भंग हो जाना, इसीलिए जब वह उस रात के बाद अपने खेमें में आती है, तो उस पर तरह–तरह के लांछन लगाये जाते हैं।

आरती स्वयं को पारम्परिक स्त्री रूप में न देखकर एक व्यक्ति के रूप में देखती है जो उस समाज या देश के लिए कुछ करना चाहती है परन्तु समाज के लोग उसे केवल स्त्री के रूप में देखते हैं स्त्री जो कमजोर है अधीन है महज एक देह।

अपने ऊपर लगाये गये इस लाच्छन को चुप–चाप नहीं सहती! वह चीख कर कहती है– ''आपको मालूम होना चाहिए– मैं संसार की प्यारी से प्यारी वस्तु को चरित्र के सामने ढोकर मार

दूंगी मैं कभी नहीं सह सकती कि, कोई मेरी ओर ऊंगली उठाये आप विश्वास रखिये मैं आज ही चली जाउंगी– आज ही।''[14]

यहाँ से निकलने के उपरांत वह समाज में कहीं भी सुरक्षित नहीं महसूस करती है। उसकी सखी लीला 'जो एक वेश्या है', कहती है, इस समाज में स्त्री के लिए कोई सुरक्षित स्थान नहीं है। इस पर आरती अपने अन्दर के उस व्यक्तित्व को खत्म कर डालती है, और इस तरह चारों ओर से पुरुषवादी समाज के असुरक्षा के घेरे में स्त्री की मुक्ति का संघर्ष अन्ततः दमित हो जाता है।

इसी क्रम की अगले कहानी नीरजना है जिसमें स्त्री अपने भविष्य के लिए चिंतित दिखाई पड़ती है। वह किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करती शादी के प्रश्न पर वह कहती है– ''वह शादी किसी भी हालत में नहीं करेगी– फाँसी लगाकर मर जायेगी, भाग जायेगी, भीख माँगेगी, चौका–बर्तन करेगा या दूसरी कोई नौकरी करेगी और आगे पढ़ेगी।''[15]

दरअसल प्रतिभा की धनी नीरजना समाज में आर्थिक रूप से खड़ी होना चाहती है, लेकिन समाज का यह बन्धन उसके विकास में बाधा उत्पन्न करती है, कि स्त्री कैसी भी क्यों न हो उसे एक औसत उम्र के बाद शादी करनी ही पड़ेगी।

'जिसमें उसकी अलौकिक प्रतिभा विवाह के अग्निकुण्ड में झोक दी जायेगी।' इस प्रकार नीरजना समाज के साथ–साथ अपने माता–पिता से भी संघर्ष करती है, और अन्त में वह अपने माता–पिता की उस दकियानूसी सोच (पैसे यदि पढ़ाई में खर्च कर देंगे तो विवाह में दहेज कैसे देंगे) को तोड़कर वह उन्हें छोड़ आती है, अपने नये भविष्य के निर्माण के लिए।

इस प्रकार राजेन्द्र यादव की कहानियों में हम स्त्री मुक्ति संघर्ष का क्रम देख सकते हैं जहाँ स्त्री का स्वर अपनी मुक्ति के लिए मूकरूप से बढ़ता हुआ प्रखरता तक पहुँचता है। सविता का रुदन, लक्ष्मी का स्वर लेते हुए, नीरजना की सशक्त आवाज बनता है। नीरजना राजेद्र यादव

की विकसित नारी है, जो न केवल अपने अधिकारों के लिए सचेत है अपितु समाज से उनके लिए लड़ती है और अंत में समाज की चारदिवारी से बाहर आकर (तोड़कर) स्वयं को सशक्त करने का निर्णय करती है। यहाँ राजेन्द्र यादव की नीरजना पॉल फ्रेरे की उन पंक्तियों को सार्थक करती है जिसमें वे कहते हैं– ''शोषक तब तक शोषण करता रहेगा जब तक शोषित चुप है जिस दिन ये चुप्पी की संस्कृति टूटेगी शोषक वर्ग का शोषण समाप्त होने की कगार पर आ जायेगा।''[16]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

[1] प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता (भूमिका) प्रकाशन– हिन्द पॉकेट बुक, 2002
[2] प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता (भूमिका) प्रकाशन– हिन्द पॉकेट बुक, 2002
[3] समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामदोनी, स्वराज प्रकाशन, 2001, पृष्ठ 29
[4] आजकल पत्रिका, सम्पादक कैलाश दहिया एवं फरहत परबीन लेख विकट जीवन के जिद्दी रचनाकार– ममता कालिया, दिसम्बर, 2013
[5] कथादेश पत्रिका, राजेन्द्रयादव की ओमा शर्मा की बातचीत सम्पादक– हरिनारायण, प्रकाशन, सहयात्रा, पृष्ठ 23
[6] जहाँ लक्ष्मी कैद है, पृष्ठ 33
[7] जहाँ लक्ष्मी कैद है, पृष्ठ 33
[8] पड़ाव–1, पृष्ठ 218–219
[9] पड़ाव–1, पृष्ठ 223
[10] पड़ाव–1, पृष्ठ 427
[11] पड़ाव–1, पृष्ठ 426
[12] जहाँ लक्ष्मी कैद है, पृष्ठ 226
[13] जहाँ लक्ष्मी कैद है, पृष्ठ 226
[14] पड़ाव–1, पृष्ठ 296
[15] जहाँ लक्ष्मी कैद है, पृष्ठ 97–98
[16] शिक्षा दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, चाँद किरण सलूजा प्रकाशन, दिल्ली, विश्वविद्यालय, शिक्षा संस्थान, 2006, पृष्ठ 306